बिना जवाब के ज़मीनों से उठते सवाल : सारा देश ही एक रियल इस्टेट
The Unanswered Land Question: The Nation as Real Estate

ए.आर.वासवी
A.R. Vasavi
February 15, 2010

मीडिया में प्रसारित कुछेक रिपोर्टों के बावजूद भारत में जमीनों को लेकर जो कुछ हो रहा है उसका प्रभाव काफ़ी गहरा पड़ा है. आदिवासियों / जनजातियों के सुदूर बसे ठिकानों से लेकर महानगरों के केंद्रों तक ज़मीन ही भारत में एकमात्र बिकाऊ माल बनकर रह गई है और सारा देश एक विशाल रियल इस्टेट बन गया है. यह मात्र संयोग नहीं है कि भारत के सबसे बड़े धनकुबेर और दुनिया के सबसे बड़े धनकुबेरों में से एक रियल इस्टेट विकासकर्ता ही है. ये सवाल कम ही उठाए जाते हैं कि इतने बड़े पैमाने पर ज़मीनों का जो कायाकल्प औद्योगिक, आवासीय, व्यावसायिक और मनोरंजक स्थलों के रूप में हो रहा है उसका राष्ट्रीय विकास के लिए क्या महत्व है, विकास का कौन-सा रूप आदर्श होगा, ज़मीन का मालिक कौन हो सकता है, उत्पादकता और राष्ट्रीय वृद्धि के लिए कितनी ज़मीन अपेक्षित होगी....ये ऐसे सवाल हैं जिन पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है. एक और भी विचारणीय और नीतिगत मामला है कि कृषियोग्य जोत का आकार तीन एकड़ से कुछ ही अधिक है और इनमें से अधिकांश मामले अब विस्थापन,अधिग्रहण और दिवालिएपन की प्रक्रिया के भी अध्यधीन हैं.

अधिग्रहणशील भूमि विकास ने सुरम्य और जैव-विविधता से भरपूर भूमिखंडों को विशिष्ट आवासन और मनोरंजन परिसरों में बदल कर रख दिया है. और विलासपूर्ण वैश्विक जीवन-शैली में रचे-बसे इन परिसरों का प्रयास यही है कि भद्रलोक के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर की रियल इस्टेट की परियोजनाओं के रूप में इन्हें पुनर्निर्मित कर दिया जाए. इनके फलस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों की स्थानिक विशिष्टता की पहचान पूरी तरह खत्म हो गई है. नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण (नोएडा) और गुड़गाँव पट्टी के उच्च स्तर के अंतर्राष्ट्रीय निर्माण-कार्यों और आवासीय परिसरों में कायाकल्प होने से उस क्षेत्र का मज़बूत कृषि आधार क्षीण और नष्ट हो गया है. मुंबई के समुद्र तट के लिए आगामी शहरी परियोजनाएँ, कोच्चि का 'स्मार्ट सिटी' , बैंगलोर-मैसूर इन्फ्रास्ट्रक्चर कॉरिडोर न केवल यह दर्शाता है कि इससे निजीकृत आर्थिक अवसरों के सीमित एजेंडे के अनुरूप भूभाग का पुनर्निर्माण किया जा सकता है,बल्कि यह विशिष्ट और अनियमित विकास के एजेंडे का भोंडा प्रदर्शन भी करता है. एक समय था जब सार्वजनिक क्षेत्र की सफलता और औपनिवेशिक युग की समाप्ति के क्षीण होते प्रतीकों की कहानियाँ सुनी जाती थीं और

अब भस्म होते छोटे गाँवों और कस्बों की राख से नई अर्थव्यवस्था के उभरते आवासीय परिसरों और वैभवपूर्ण वैश्विक आईटी केंद्रों का मार्ग प्रशस्त हो रहा है.

ऐसे बाज़ार द्वारा नियंत्रित रियल इस्टेट के विकास के अंतर्विरोध और खतरे सभी महानगरों के सबसे अधिक विशिष्ट क्षेत्रों में दिखाई पड़ने लगे हैं. आप किसी शानदार सड़क के पीछे की सड़कों को देखें तो आप ऊँची-ऊँची इमारतों और ज़मीन के अनियमित दुरुपयोग की अव्यवस्था को साफ़ देख सकते हैं, खतरनाक ढंग से होते निर्माण कार्य को देख सकते हैं, भीड़-भाड़ वाली जर्जर इमारतों को देख सकते हैं और रोगाणु फैलाने वाली जीवन स्थितियों को साफ़-साफ़ देख सकते हैं. विलासपूर्ण, सुरक्षित और सुविधासंपन्न रियल इस्टेट के व्यावसायिक प्लॉटों की छवियों वाले विज्ञापनों में इस बात को छिपा दिया जाता है कि इनसे उन लोगों को कितना नुक्सान होता है जिन्हें न तो ईमानदारी से इनका लाभ मिलता है और न ही उनके पास इसका कोई विकल्प होता है. इन विलासपूर्ण आवासीय परिसरों से कितने ही लोगों की रोजी-रोटी खत्म हो जाती है. इन परिसरों में आने वाले नए मकान-मालिकों की सुरक्षा की आड़ में कितने ही परिवार रुल जाते हैं और अक्सर बेघर भी हो जाते हैं. बंद समुदायों की सुविधाओं के पीछे कितने ही परिवार अपना मान-सम्मान और अपना मालिकाना हक भी खो बैठते हैं.

भू दृश्यों पर दिखाई देने वाली हिंसा तो उस गहन हिंसा की झलक मात्र है जो वस्तुतः ज़मीन की लूट-खसोट को लेकर होती है. महानगरों या फिर भावी औद्योगिक प्रतिष्ठानों के लिए चिह्नित क्षेत्रों के आसपास बसे गाँव एक के बाद एक भू माफ़िया के कब्ज़े में आते जा रहे हैं और जिन्होंने अपनी खेतीबाड़ी की ज़मीन का सौदा कर लिया है वे या तो ज़मीन बेचकर प्राप्त धनराशि से निठल्ले लोगों की नई ज़मात में शामिल हो गए हैं या फिर विस्थापित हो गए हैं. ज़मीन की सौदेबाजी अब बागबानों और रमणीक दृश्यों तक भी पहुँच गई है, जिसका मुख्य लक्ष्य अब शहरी ज़रूरतों और इच्छाओं की पूर्ति हो गया है. पहले इसका मकसद दीर्घकालीन उत्पादन और रोज़गार बढ़ाना था,लेकिन अब इसका मकसद मनोरंजन स्थलों और कभी-कभार विलासपूर्ण स्थलों का निर्माण करना रह गया है.
निर्बाध रूप में ज़मीन की लूट-खसोट के कारण बड़े-बड़े भूमिखंड बदरंग और ऊबड़-खाबड़ से पड़े हैं. रियल इस्टेट के विकास का व्यावसायिक लाभ पाने के लिए ज़मीन,पानी और ऊर्जा के पर्यावरण संबंधी मामलों की अनदेखी कर दी जाती है. सूचना प्रौद्योगिकी की लंबी-चौड़ी चर्चाओं के बावजूद लेन-देन की यह सौदेबाजी जटिल और उलझे हुए नियमों के कुहासे में निर्बाध रूप में जारी रहती है. एजेंट और गैर-कानूनी तौर पर समझौते कराने

वाले वार्ताकार हावी रहते हैं और कानून-प्रिय नागरिक ज़मीन के पंजीकरण और उपयोग संबंधी जटिल प्रक्रियाओं के कारण दबे-से रहते हैं. भोले-भाले नगरवासी, गरीब कामगार, बड़ी उम्र के लोग, सेवानिवृत्त दम्पति या अकेले रहने वाले लोग ज़मीन-लॉबियों और बिल्डरों द्वारा फैलाई गई विस्थापन की हिंसा के शिकार होते हैं. अधिकांश महानगरों में नियमित रूप से रियल इस्टेट एजेंटों, मकानों और ज़मीनों के मालिकों की हत्या की खबरें प्रकाशित होती रहती हैं. अब जब ज़मीन पर अधिकार का आंदोलन ज़ोर पकड़ने लगा है तो सरकार ने ज़मीन का यह बाज़ार राष्ट्रीय और वैश्विक खिलाड़ियों के लिए भी खोल दिया है. आर्थिक विकास के लिए बाज़ार के इस अपरिहार्य नियम के कारण ऐसी नई नीतियाँ बनाई जा रही हैं जिनके कारण अब खेती-बाड़ी की उर्वर ज़मीनें भी ज़मीन के माफ़िया तक पहुँच जाएँगी. राज्य द्वारा स्वयं ही वैश्विक पूँजी की माँग उठाकर इसके विरोध के मुखर स्वर और आलोचना को दबा दिया गया है और इसका खामियाज़ा भुगतने वाले नागरिकों के अधिकारों और हितों की अनदेखी की जाने लगी है. भूमि अधिग्रहण के विरोध में सिंगूर और नंदीग्राम में लोगों द्वारा किया गया आंदोलन प्रतीकात्मक और अपवाद-स्वरूप ही है. वैसे तो भूमि अधिग्रहण के नाम पर तो लोगों ने आत्मसमर्पण ही कर दिया है.

यह विडंबना है कि विलासपूर्ण विला और अपार्टमेंट अब बहुतायत में मिलने लगे हैं और इनके लिए ग्राहक भी कम पड़ने लगे हैं. इसलिए अब बिल्डर और योजनाकार मध्यम और निम्न आय वर्ग के लोगों के बारे में सोचने लगे हैं और उनका नया बाज़ार-मंत्र है कि इन वर्गों के लोगों के लिए "पिरामिड की तली" में व्यवस्था की जाए. देश को रियल इस्टेट ग्रिड में ले जाने के कारण अब ज़मीन वतन का प्रतीक नहीं रह गया है. वतन एक ऐसी चहल-पहल की जगह होती थी, जिसमें लोग मिल-जुलकर रहते थे, एक दूसरे का साथ देते थे और साथ-साथ काम-धंधा भी करते थे. आज ज़मीन एक ऐसा प्रतीक बन गई है, जिससे शोषण और अधिकारों का हनन किया जा सकता है. यही कारण है कि इसने लोकतांत्रिक नीति और समाज की जड़ों को हिला कर रख दिया है.

आज चुनौती इस बात की है कि ज़मीनों का उपयुक्त बाज़ार कैसे विकसित किया जाए और इसके साथ-साथ बहुसंख्यक लोगों की आजीविका और जीवन को सुरक्षित कैसे किया जाए. इस पर तत्काल ध्यान देने की ज़रूरत है. आवश्यकता इस बात की है कि सामान्यतः ज़मीन और विशेषकर कृषियोग्य ज़मीन को ऐसा बनाया जाए जिससे कुल आबादी के अधिकांश लोग (अब 52 प्रतिशत लोग),जो कृषि पर आश्रित हैं, अपना जीवन-यापन अच्छी तरह से कर सकें. ज़मीन से जुड़े सवालों में प्रमुख हैं, पर्यावरण की दृष्टि से

उपयुक्त और विविध उत्पादन मॉडल,वैश्विक जलवायु परिवर्तन से संबंधित समस्याओं के समाधान की क्षमता, बाज़ार की शक्तियों के उतार-चढ़ाव को सँभालना और आर्थिक, पर्यावरण संबंधी और सामाजिक दृष्टि से अर्थक्षम होने की आवश्यकता. ज़मीन के अधिकारों का उल्लंघन वस्तुतः घटती कृषि अर्थव्यवस्था और बढ़ती शहरी वैश्विक अर्थव्यवस्था के बीच के तनाव का परिचायक है. इस संदर्भ में यदि शुद्ध नव-उदार मॉडल लागू हो जाता है जिसमें ज़मीन का पूरी तरह से बाज़ारीकरण हो जाएगा, तो ज़मीन के कृषि बनाम औद्योगिक उपयोग, ग्रामीण बनाम शहरी विकास और बाज़ार की माँग बनाम पर्यावरण की दृष्टि से स्थिरता की लंबे समय से चली आ रही जटिल समस्याएँ और भी जटिल हो जाएँगी.

सामाजिक नृवंशविज्ञानवेत्ता ए.आर, वासवी बेंगलोर (भारत) स्थित राष्ट्रीय उन्नत अध्ययन संस्थान में प्रोफ़ेसर हैं. यह निबंध उनकी शीघ्र प्रकाशित होने वाली अगली पुस्तक ग्रामीण भारत में आत्महत्याएँ और दुर्दशा *से लिया गया है.*

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा),रेल मंत्रालय, भारत सरकार

<malhotravk@hotmail.com>